PANINI VAIDIKA GRANTHAMALA 8

अथर्ववेदीया माण्डूकीशिक्षा

भूमिका, परिशिष्ट तथा सूचियों सहित

सम्पादक

भगवद्दत्त

पाणिनि

नई दिल्ली

ओ३म्

माण्डूकी शिक्षा।

भूमिका।

हस्तलेख वा अन्य सामग्री।

(१) प, दक्षिण कालेज पूना के हस्तलेखों के राजकीय-संग्रह की सूची (१९१६ सन्) में इस हस्तलेख का विवरण संख्या ४०५ (पुरानी संख्या १७८ (vii) १८८०–८१) के नीचे है। आरम्भ है इसका पत्र १ख से, और समाप्ति १४क की अन्तिम से पूर्वली पंक्ति अर्थात् शिखर से सातवीं पंक्ति पर। हस्तलेख की समाप्ति पर कोई तिथि नहीं दी गई। लेख लगभग २०० वर्ष पुराना प्रतीत होता है। यह हस्तलेख गुर्जरदेशीय किसी पंचोली ब्राह्मण-कुल का है। ये ब्राह्मण अथर्ववेदीय साहित्य की परम्परा के लिये सुप्रसिद्ध हैं।* यह बात यद्यपि हस्तलेख के अन्त में नहीं लिखी तथापि निम्नलिखित कारण से मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं।

नकल करने वाला वही सुविज्ञात अशुद्धियां करता है जो पंचोलीकुल के (अ) हस्तलेख में हैं जिस का वर्णन मैं पञ्चपटलिका की भूमिका पृ० १, २ पर कर चुका हूं। उदाहरणार्थ—'स्वर्गः' के स्थान में (अ) 'स्वर्ग्र' देता है (देखो पं० पटलिका मूलपाठ

* देखो, अथर्ववेद के मुम्बई संस्करण के 'आलोचनात्मक विज्ञापन' में पिण्डत शङ्कर पाण्डुरङ्गकृत अथर्ववेद के हस्तलेखों का विवरण।

पृ० १४ का ३. पाठभेद) और यह (प) 'वग्रोन्ता' (मा० शि० ११। ४॥) देता है। पुनः (अ) और (प) दोनों ही अनेक स्थलों में च और व का भेद नहीं करते। [प] में 'तैलधारेव' के स्थान में तैलधारे च० मा०४। १५॥ है।

हस्तलेख धा को ध्रा लिखने के पुरातन प्रकार को सुरक्षित रखता है। धातु=ध्रातु ५। ५॥ कुछ स्थलों में को=का है। अनेक स्थलों में 'ग्' के स्थान में 'क्' है। देखो मा० ४। ८॥ पर पाठभेद। अनुस्वार का निरर्थक प्रयोग बहुत किया गया है। यथा 'द्रुतां' १। ४॥ अन्य स्थलों में 'ब्रंह्म'।

हस्तलेख की विस्पष्ट अशुद्धियां नहीं दी गईं। यथा ऋलृवर्णौ के स्थान में ऋलिवर्णौ ८। ८॥

प हस्तलेख इसी चिह्न से हमारी ग्रन्थमाला के दन्त्योष्ठ-विधिः ग्रन्थ में वर्ता गया है।

(२) द, पूर्वोक्त संग्रहस्थ है। इसका आरम्भ है—

ओं नमो दक्षिणामूर्त्तये। ओं नमो ब्रह्मवेदाय।

यह लगभग २५० वर्ष पुराना है। पोथी के अन्त पर कोई तिथि नहीं दी गई। (प) हस्तलेख वाली बहुत सी विशेषताएं इस में मिलती हैं। प्रथम पत्र से लेकर पत्र १८ के अन्त तक यह ग्रन्थ गया है। उस से आगे पत्र ३५ के अन्त अर्थात् पुस्तक समाप्ति तक ब्रह्मवेदस्यांगं ज्योतिष ग्रन्थ है। अध्याय आदि की समाप्ति पर 'छुं:' चिह्न है।

उसी लेखनी से हाशिये पर संशोधन किया गया है।

(३) ग, यह भी पूर्वोक्त संग्रह का ग्रन्थ है। इस का आरम्भ है—

श्री गणेशाय नमः ॥ हरि ॐ ॥

कुल पत्र १३ हैं। अन्त पर यह लिखा है—

॥ श्रीजयति ॥ श्रीरस्तु ॥ शके १७ शे ७२ साधारण-नाम संवत्सरे आषाढ शुक्ल अष्टम्यां सौम्यवासरे तद्दिने लेखनं समाप्तम् ॥ छ ॥ गोरे इत्युपनामक भास्करभट्टस्येदं पुस्तकं खलु ॥
ग्रन्थ संशोधित है।

[१] और [२] ग्रन्थ गुर्जरदेशीय और [३] महाराष्ट्रीय है।

[४] का, काशी में १८९३ में पं० युगलकिशोर व्यास ने "शिक्षा सङ्ग्रह" नामक एक ग्रन्थ छपाया था। उसके अन्त में माण्डूकी शिक्षा छपी है। इस का आधार केवल एक हस्तलेख था। उस के विषय में सम्पादक ने भूमिका पृ० २ पर लिखा है—

"ततो वाराणसेय रामघट्टवास्तव्य गुर्जरदेशीय पञ्चोल्यु-पाधिधारिणो ऽथर्ववेदीय शौनकशाखीयाध्ययनाध्यापनशालिनः श्रीमज्जयदेवशर्महस्तपङ्कजान्माण्डूकी शिक्षिकाऽतीवप्राचीना वर्षशतद्वयात्मिकाऽत्यन्तशुद्धोपलब्धा कालत्रितयेनाऽप्यलब्धा ऽमुद्रणीया च।"

यह मुद्रित पुस्तक एक अच्छे, पुराने और पर्याप्त शुद्ध हस्तलेख का काम देता है। पर यह सन्देह बना ही रहता है कि सम्पादक ने मूलपाठों के साथ कहां तक स्वतन्त्रता वर्त्ती है।

स्मरण रहे कि यह हस्तलेख भी पंचोली ब्राह्मण से ही आया है।

मुद्रित पुस्तक में खण्ड वा अध्याय विभाग नहीं मिलता। श्लोक संख्या क्रमशः दी गई है। कुल संख्या १७९ है। पर क्योंकि १२८ का उत्तरार्द्ध और १२९ का पूर्वार्द्ध द्विवार आया है, अतः कुल संख्या १७८ है।

इस हस्तलेख में कुछ श्लोक रह गये हैं।

इन के अतिरिक्त राजेन्द्रलालमित्र-सम्पादित "संस्कृत हस्त-

लेखों के विज्ञापनों" के प्रथम भाग में एक और हस्तलेख का वर्णन है। उस का स्थान 'कलिकातास्था एसियाटिक् सोसाइटी' बताया गया है। यह हस्तलेख १३५ संख्या के नीचे दर्शाया गया है। इस की प्राप्ति के लिये मैंने उक्त सभा के मन्त्री महाशय को लिखा था। उत्तर में उन्होंने लिखा—

.........As for the transcript of Manduki Siksha, the ms. is not available in the Library. dated 5. 7. 21.

माण्डूकी शिक्षा के कुछ अन्य हस्तलेख भी संसार के और पुस्तकालयों में विद्यमान हैं, पर समयाभाव से वे नहीं देखे जा सके।

चार अध्यायों का पाठसंशोधन मैंने मार्च १९२१ सन् में कर लिया था। तत्पश्चात् मैं अस्वस्थ हो गया। पुनः जून में डलहौज़ी पर्वत पर मैंने इन हस्तलेखों पर काम आरम्भ किया। यद्यपि मुझे स्मरण था कि मैं चार अध्याय तक संशोधन करके पत्रादि सुरक्षित रख आया हूं, पर लाहौर से निश्चयात्मक पत्र आने पर कि संशोधन छः अध्याय तक हो चुका है, मैंने सातवें अध्याय से काम आरम्भ किया। जून के अन्त में मैंने हस्तलेख लौटा दिये। इस भूल के कारण, जिस के लिये कि मैं क्षमाप्रार्थी हूं, अध्याय ५ और ६ के पाठसंशोधन में द, ग हस्तलेख काम में नहीं लाये जा सके।

मा० शि० के सम्पादन में मैंने याज्ञवल्क्य और नारदीय शिक्षा के निम्नलिखित मुद्रित पुस्तकों से भी सहायता ली है।

(१) याज्ञवल्क्यशिक्षा। उव्वट तथा महीधरभाष्ययुक्त शुक्लयजुर्वेद संहिता के परिशिष्टों में पृ० २—६ तक छपा है। (निर्णयसागर संस्करण, सन् १९१२)।

(२) याज्ञवल्क्यशिक्षा। शिक्षा संग्रह में यह ग्रन्थ प्रथम स्थान पर छपा है।

(३) याज्ञवल्क्यशिक्षा। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र विरचितया

भाषाटीकया समलंकृता। श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालय, बंबई। संवत् १९५९।

(४) नारदीयशिक्षा। सत्यव्रतसामश्रमी सम्पादित। कलकत्ता, सन् १८९०।

(५) नारदीयशिक्षा (भाषाटीका समेत) पं० दत्तात्रेय द्वारा प्रकाशित। लाहौर सन् १९०९।

(६) नारदीयशिक्षा। शिक्षासंग्रह अन्तर्गत। शोभाकरभट्ट-भाष्य युक्त।

हम ने तुलना में ३ और ४ के ही पते दिये हैं। दोनों याज्ञ० और ना० शिक्षाओं के सारे संस्करण बहुत विभिन्न हैं। इन के युक्त सम्पादन की बड़ी आवश्यकता है। इन के अनेक पाठ सुस्पष्ट बताते हैं कि याज्ञवल्क्यादि शिक्षाएं पृथक् २ शाखाओं में विभक्त हो चुकी हैं।

शिक्षा अङ्ग का सामान्य इतिहास।

वेद के छः अङ्गों में से शिक्षा प्रथम अंग है। इस का वर्णन निम्नलिखित प्राचीन ग्रन्थों में अभी तक मिला है।

(१) गोपथब्राह्मण १। २४॥ में कहा है—

"ओंकारं पृच्छामः।...........किं स्थानानुप्रदानकरणं, शिक्षुकाः किमुच्चारयन्ति।"

पुनः गो० ब्रा० १। २७॥ में कहा है—

'किं स्थानमित्युभावोष्ठौ।...........

द्वितीयस्पृष्टकरणस्थितिश्च।.........

षडङ्गविदस्तत्तथाधीमहे।.........

इन दोनों स्थलों पर स्पष्ट ही शिक्षाशास्त्र और उसके विषय का उल्लेख है। इन्हीं भावों को लेकर मध्यम कालीन लेखकों ने शिक्षा का ऐसा ही लक्षण किया है। जैसे राजशेखर [वि० सं० ९३७–१०७७] काव्यमीमांसा में लिखता है।

"तत्र वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिः निष्पत्तिनिर्णयिनी शिक्षा आपिशलीयादिका।" अध्याय २

[२] ऐतरेय आरण्यक ३।५।।५॥ और शांखायन आरण्यक ८।८॥ में "वाचं उपनिषत्" का वर्णन करते हुए 'स्पर्श, ऊष्म' और 'स्वरों' का कथन किया गया है।

[३] क, मुण्डकोपनिषत् १।५॥ में वेद के छः अङ्गों के नाम लिये गये हैं। वहां शिक्षा को सब से पहले गिना है।

ख, तैत्तिरीयोपनिषत् के प्रथमाध्याय का तो नाम ही शीक्षोपनिषत् वा शीक्षाध्याय है। उस का प्रथम वाक्य यह है—

"शीक्षां व्याख्यास्यामः।"

[४] निरुक्त १।२०॥ में भी 'वेदाङ्गानि' कहकर शिक्षादि अङ्गों का परिचय दिया है।

[५] महाभाष्य के प्रारम्भ में ही 'षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेय इति' कहा गया है।

पूर्वोक्त प्रमाणों से पता लगता है कि शिक्षाशास्त्र का प्रचार अत्यन्त प्राचीन काल से चला आता है।

प्रातिशाख्य और शिक्षा।

प्रातिशाख्य और शिक्षाओं का सम्बन्ध जानने से पहले प्रातिशाख्यों के काल का ज्ञान लेना निष्प्रयोजन न होगा। इस के जानने से शिक्षान्तर्गत सिद्धान्तों का इतिहास भी जाना जायगा। इसी विचार से हम पहले प्रातिशाख्यों के काल पर विचार करते हैं।

प्रातिशाख्य-काल।

[१] यास्क निरुक्त १।१७ में कहते हैं—

"पदप्रकृतिः संहिता। पदप्रकृतीनि सर्वचरणानां पार्षदानि।"

अर्थात् पदों का मूल संहिता है। पदमूलक सारे चरणों के पार्षद=प्रातिशाख्य हैं।

इस वाक्य से प्रतीत होता है कि यास्क के काल तक जितने भी चरण थे, उनके प्रातिशाख्य बन चुके थे।

[२] ऋक्प्रा० १०५॥ का वचन है—"संहिता पदप्रकृतिः"

अनेक लेखकों का मत है कि यास्क ने इसी प्रातिशाख्य सूत्र को थोड़ा सा बदल कर अपने निरुक्त में उद्धृत किया है। कारण कि यास्क से पहले प्रातिशाख्य बन चुके थे।

[३] ऋक्प्रा० ६६३॥ में एक श्लोक का यह प्रथमार्द्ध है—

न दाशतय्येकपदा काचिदस्तीति वै यास्कः।

अर्थात् ऋग्वेद के दशों मण्डलों में कोई एकपदा ऋचा नहीं, यह यास्क का मत है। [अन्य आचार्य असिक्न्यां यजमानो न होता॥ ऋ० ४।१७।१५॥ भद्रं नो अपि वातय मनः॥ ऋ० १०।२०।१॥ इत्यादि का एक पदा मानते हैं।]

परिणाम।

पूर्वोक्त तीन प्रमाणों से निम्नलिखित परिणाम निकल सकते हैं—

[क] ऋक्प्रा० यास्क से पीछे का है।

[ख] ऋक्प्रा० में कई वाक्य भिन्न २ समयों में शौनकीय सिद्धान्त के मानने वालों ने मिलाए हैं। प्रस्तुत ६६३ वचन भी यास्क से पीछे मिलाया गया है, यद्यपि ऋक्प्रा० का अधिकांश यास्क से पूर्वला है।

[ग] अनेक यास्क हो सकते हैं। ऋक्प्रा० का यास्क कोई बहुत पहला यास्क है।

हम इन में से अन्तिम बात पर सब से पहले विचार करेंगे।

यास्क कितने हुए हैं ?

सम्भव है आर्यों के लाखों वर्ष के इतिहास में अनेक यास्क हो चुके हों। सम्प्रति तो यास्क नाम का उल्लेख इन स्थलों में आता है—

[१] भारद्वाजो भारद्वाजाच्चासुरायणाच्च यास्काच्च ॥

शतपथ ब्रा० १४।७।२७॥ यहां वंशकथन में प्रसंगतः यास्क का नाम आया है।

[२] वैशम्पायनो यास्कायैतां प्राह पैङ्गये।
यास्कस्तित्तिरये प्राह उखाय प्राह तित्तिरिः ॥
तैत्तिरीय काण्डानुक्रमणिका अ० ३। २५ ॥

यहां तैत्तिरीयों की परम्परा में पैङ्गय यास्क का नाम आया है।

(३) महाभारत के सुप्रसिद्ध प्रमाण में निरुक्त-कर्त्ता यास्क का उल्लेख तो मिलता ही है। यही यास्क निघण्टु का भी कर्त्ता है। (देखो निघण्टु पर मेरा लेख, ज्योति संख्या १ अङ्क १)

(४) ऋक् प्रा० में यास्क का एकपदा छन्द सम्बन्धी विचार अभी ऊपर लिखा गया है। इस के अतिरिक्त पिङ्गल छन्दःसूत्र अ० ३॥ में ये तीन सूत्र हैं—

न्यङ्कुसारिणी द्वितीयः ॥ २८ ॥

स्कन्धोग्रीवो क्रौष्टुकः ॥ २९ ॥

उरोबृहती यास्कस्य ॥ ३० ॥

अर्थात् न्यङ्कुसारिणी को ही यास्क उरोबृहती छन्द मानता है।

पिङ्गल और ऋक्प्रा० का यास्क तो एक ही है, क्योंकि दोनों स्थलों पर एक ही (छन्द सम्बन्धी) विषय का प्रतिपादन

है। यह यास्क निरुक्त वाला यास्क ही है । पिङ्गल निस्सन्देह यास्क से पिछला है, अतः उस से पहले निरुक्त वाला यास्क प्रसिद्ध हो चुका था। प्रश्न हो सकता है कि यास्क के ये सिद्धान्त निरुक्त में क्यों नहीं मिलते? उत्तर में कहा जा सकता है कि यास्क ने और भी कई ग्रन्थ बनाए हों। उन्हीं ग्रन्थों में ये सिद्धान्त हो सकते हैं। इस प्रकार तीसरे और चौथे प्रमाण में कहे गए यास्क का एक ही व्यक्ति होना बहुत सम्भव है।

दूसरे प्रमाण वाला यास्क तैत्तिरीय परम्परा वाला है। वह है भी अति प्राचीनकालस्थ। उस का विशेषण पैङ्गी है। अतः वह ऋग्वेदीय निरुक्तकार से भिन्न प्रतीत होता है। पहले प्रमाण वाला यास्क भी अति प्राचीन है। पर्याप्त सामग्री के अभाव में यद्यपि भिन्न २ यास्कों का पूर्ण निश्चय नहीं हो सकता, तथापि इतना स्पष्ट है कि निरुक्तकार यास्क ही ऋक्प्रा० में उद्धृत किया गया है। पहले दो प्रमाणों वाले यास्क उस से तो भिन्न हैं, पर वे दोनों एक ही हैं या नहीं, इस से हमें अभी विशेष प्रयोजन नहीं।

मूल ऋक्प्रा० यास्क से पूर्व का है, पर उस का अन्तिम संस्करण यास्क से पीछे का है।

ऋग्वेद की २१ शाखायें हैं। उनमें से शाकल्यपदपाठ या शाकलशाखा बहुत प्रसिद्ध है। उसी से बहुत *सम्बन्ध रखने वाला यह प्रा० है। इसके अतिरिक्त और कोई ऋक्प्रा० मिलता भी नहीं। एवं सम्भव नहीं हो सकता कि शाकल्य पदपाठ पर, जो यास्क से कहीं पहले का है कोई प्रा० न बना हो। हमारी समझ में तो वह प्रा० यही शौनक प्रा० है। उस प्रा० में शौनक की परम्परा वाले ही अनेक परिवर्तन करते चले आए थे। तदनुसार यास्क का पूर्वोक्त मत भी

* देखो! ऋग्वेद पर व्याख्यान पृ० १३।

मूल प्रा० में प्रविष्ट हो गया। अतः प्रातिशाख्य तो बहुत पुरान है, पर उस का अन्तिम संस्करण यास्क से पिछला है।

ऋक्प्रा० में शिक्षा शास्त्र के श्लोक।

क्योंकि हमने मा० शि० की अन्य शिक्षाओं से तुलना में केवल याज्ञ० वा नारद शि० से ही काम लिया है, अतः यहां भी ऋक्प्रा० के वचनों की उन्हीं दो और मा० शि० से तुलना करेंगे।

(१) तिस्रो वृत्तीरुपदिशन्ति वाचो विलम्बितां मध्यमां च द्रुतां च।
वृत्त्यन्तरे कर्मविशेषमाहुर्मात्राविशेषः प्रतिवृत्त्युपैति ॥७५६*॥

(२) अभ्यासार्थे द्रुतां वृत्तिं प्रयोगार्थे तु मध्यमाम्।
शिष्याणामुपदेशार्थे कुर्याद्वृत्तिं विलम्बिताम्॥ ७५७॥

(३) चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रां वायसोऽब्रवीत्।
शिखी त्रिमात्रो विज्ञेय एष मात्रापरिग्रहः॥ ७५८॥

(४) पदक्रमविभागज्ञो वर्णक्रमविचक्षणः।
स्वरमात्राविशेषज्ञो गच्छेदाचार्यसंसदम्॥ २॥

पूर्वोक्त उद्धरणों में प्रथम श्लोक मा० शि० १। १॥ से कुछ मिलता है। दूसरा या० १। ५२॥ तथा ना० १। ६। २१॥ से अक्षरशः मिलता है, पर मा० से कुछ भिन्न है। तीसरा मा० १३। ३॥ से प्रायः मिलता है, और या० १। १७, १८॥ से पर्याप्त मिलता है। चौथा मा० ३। ७॥ से कुछ २ सदृशता रखता है। यत्न करने पर कुछ और वचन भी मिल सकते हैं, पर हमारे काम के लिये इतने बहुत हैं।

---

* प्रमाण मैक्समूलर के संस्करण से दिये गये हैं।

शौनक चतुरध्यायी में शिक्षाशास्त्र के श्लोक।

ह्विटने शौ० च० के अनुवाद के पृ० ४८४ पर अर्थात् तृतीय अध्याय के तृतीय पाद के आरम्भ में यह लिखता है—

By way of introduction to the section, and before stating and explaining its first rule, the commentator gives the following four verses:—(J.A.O.S.17th vol: P. 484)

अर्थात् शौ० च० का वृत्तिकार चार श्लोक उद्धृत करता है।

ये श्लोक वृत्तिकार के नहीं, प्रत्युत मूलपाठान्तर्गत हैं।

ह्विटने के पास इस ग्रन्थ का केवल एक ही हस्तलेख था। उस में मूल और वृत्ति साथ २ थे। मैंने और मित्र विश्वबन्धु एम० ए०, शास्त्री ने पूना भण्डारकर पुस्तकालयस्थ सूत्रपाठ के चार अन्य हस्तलेखों से ह्विटने के पाठों का संशोधन किया था। उन चारों हस्तलेखों में ये श्लोक मूलपाठान्तर्गत थे। उन में से तीन ये हैं—

अभिनिहितः प्राश्लिष्टो जात्यः क्षैप्रश्च तावुभौ।
तैरोव्यञ्जनपादवृत्तावेतत् स्वरितमण्डलम् ॥ १ ॥
सर्वतीक्ष्णो ऽभिनिहितस्ततः प्राश्लिष्ट उच्यते।
ततो मृदुतरौ स्वारौ जात्यः क्षैप्रश्च तावुभौ ॥ २ ॥
ततो मृदुतरः स्वारस्तैरोव्यञ्जन उच्यते।
पादवृत्तो मृदुतर इति स्वारबलाबलम् ॥ ३ ॥

यहां प्रथम श्लोक मा० ७। २॥ से बहुत मिलता है। दूसरा और तीसरा तो साक्षात् मा० ८। २, ३॥ हैं॥

प्रातिशाख्यान्तर्गत ये शिक्षा-शास्त्र के श्लोक किस शिक्षा के हैं ?

अब तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं। (१) क्या आधुनिक शिक्षाओं ने ये श्लोक प्रातिशाख्यों से लिये हैं ? अथवा (२) प्रातिशाख्यों ने इन शिक्षाओं से लिये हैं ? या (३) दोनों ने किसी एक पुराने स्रोत से लिये हैं, और वह स्रोत कौनसा है ?

यह सन्देहरहित है कि आधुनिक शिक्षाओं ने अपनी बहुतसी सामग्री किसी एक ही स्थान से ली है। कारण, कि अनेकों शिक्षाओं में एक ही प्रकार के वचन पाये जाते हैं। मा० शि० की जो तुलना हम ने या० और ना० से की है, उस से यह स्पष्ट है। और इन सारी शिक्षाओं का क्रम प्रायः सदृश होने से यह भी निर्विवाद है कि ये सब सम-कालीन हैं, या इन की रचना में काल का अन्तर थोड़ा ही है। अतएव इन में कोई भी ऐसी नहीं जो सब का मूल कही जा सके। वह मूल अवश्यमेव बहुत पुराना था। हम बता चुके हैं कि आर्य्य वाङ्मय के इतिहास में शिक्षा-शास्त्र की विद्यमानता अति प्राचीन काल से है। प्रातिशाख्य यद्यपि पुराने हैं, पर वेदाङ्ग न होने से सम्भवतः इतने पुराने नहीं, जितना शिक्षाशास्त्र। ऐसी स्थिति में (१) और (२) प्रश्न तो त्याज्य हो जाते हैं।

शिक्षा-शास्त्र अधिक पुराना है, अतः उस की सामग्री प्रातिशाख्यों की अपेक्षा पुरानी है। प्रातिशाख्यों ने उसी मूल शिक्षा-शास्त्र से ये श्लोक लिये हैं। और आधुनिक शिक्षाओं ने भी उसी से ये श्लोक लिये हैं। नारद शिक्षा १।३॥ में तो कहा भी है—

"भवन्ति चात्र श्लोकाः"

ऐसा कहने से पता लगता है कि आधुनिक शिक्षाओं में निस्सन्देह पुराने वाक्य सम्मिलित किये गये हैं। ये सब किसी एक मूल शिक्षा के थे।

वह मूल शिक्षा कौनसी है ?

उस मूल शिक्षा का पता लगना अति कठिन है। सम्भव है अधिक खोज होने पर वह मिल जाय। हां, इतना कहा जा सकता है कि आधुनिक सब शिक्षाओं की अपेक्षा पाणिनीय शिक्षा बहुत पुरानी है और मूल शिक्षा पाणिनि आदि ऋषियों की शिक्षाओं से भी कहीं पुरानी थी। हमारा अभिप्राय उस पाणिनीय शिक्षा से नहीं जो ऋक् और यजुः दो शाखाओं में विभक्त सम्प्रति मिलती है। प्रत्युत हमारा निर्देश उस शिक्षा की ओर है जो ऋषि दयानन्द सरस्वती ने सम्पादित की थी। (इस पर अधिक विस्तार "अष्टाध्यायी भाष्यम्" दयानन्द सरस्वती प्रणीतम् के प्रथमाङ्क के अन्तिम पृष्ठों पर मेरी टिप्पणी में देखो।)

आधुनिक शिक्षाओं का काल।

अब रहा विचार आधुनिक शिक्षाओं के काल के सम्बन्ध में। ये शिक्षाएं प्रातिशाख्यों से बहुत पीछे की हैं। इसीलिये एक नवीन शिक्षा में कहा है—

शिक्षा च प्रातिशाख्यं च विरुध्येते परस्परम्।
शिक्षैव दुर्बलेत्याहुः सिंहस्यैव मृगी यथा॥

(सर्वसम्मत शिक्षा। इण्डियन अण्टीक्वेरी मास मई सन् १८७६ के पृ० १४२ पर डा० एफ० कीलहार्न द्वारा उद्धृत।)

प्रो० कीलहार्न ने पूर्वोक्त स्थान पर अगले दो प्रमाण और दिये हैं। उन से भी इन शिक्षाओं का प्रातिशाख्यों के पीछे संगृहीत होना निश्चित होता है—

मध्यमां वृत्तिमालम्ब्य चैवं कालाः सुनिश्चिताः।
प्रातिशाख्यादिषु ह्यत्र वृत्तिः साप्यवलम्बिता॥ १॥

(व्यास शिक्षा)

लुप्ते नकारेऽप्यनुस्वारं रञ्जन्ति शौनकादयः।
एवं रङ्गं विजानीयान्नत्वा भीरिव विन्दति ॥ २ ॥
(या० २। ११६॥)

प्रथम प्रमाण में तो स्पष्ट प्रातिशाख्यों का वर्णन है। द्वितीय प्रमाण में शौनकादि कह कर ऋक्प्रा० आदिकों की ओर संकेत किया है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आधुनिक शिक्षाओं के मूल बहुत पुराने थे। मूल शिक्षाशास्त्र से तो पुराने नहीं, पर इन शिक्षाओं से पुराने थे। इसका स्पष्ट कारण तो यही है कि लगभग सभी आधुनिक शिक्षाओं में लिखा है कि अमुक आचार्य के मतानुसारी यह शिक्षा है। जैसे माण्डूकी शिक्षा २। ३॥ में कहा है—

मण्डूकस्य मतं यथा।

यही व्यवस्था नारद, याज्ञवल्क्य आदि शिक्षाओं की भी है।

उव्वट ऋक्प्रा० और शुक्लयजुः प्रा० के भाष्य समय अनेक स्थलों पर याज्ञवल्क्यादि शिक्षाओं के प्रमाण उद्धृत करता है। अतः ये सब शिक्षाएं उव्वट (लगभग १००० वि०) के काल से अवश्य पहले की हैं।

वैदिक साहित्य में माण्डूकी शिक्षा के प्रवर्त्तक का परिचय।

मण्डूक ऋषि का वैदिक साहित्य में कोई परिचय मिलता है, वा नहीं? अब इस विषय पर विचार किया जायगा। प्रस्तुत माण्डूकी शिक्षा के सिद्धान्तों का, यद्यपि उन में स्वतन्त्र सिद्धान्त तो कोई ही हों, मूलप्रवक्ता मण्डूक ऋषि था। यह इसी शिक्षा के "मण्डूकस्य मतं यथा" २। ३॥ वचन से ज्ञात होता है। आर्य्यावर्त्त

के प्राचीन काल में एक ही मण्डूक था वा अनेक, इस पर अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। हां, एक मण्डूक का पुराने साहित्य में स्पष्ट वर्णन आया है। वही इस शिक्षा से सम्बन्ध रखता है, यह भी निश्चयरूपेण नहीं कहा जा सकता। अष्टाध्यायी का सूत्र है—

ढक् च मण्डूकात् ४। १। ११९ ॥

इस सूत्र में मण्डूक किसी ऋषि विशेष का नाम है। वह पाणिनि के काल से कहीं पुराना था। उसी की सन्तान माण्डूकेय आदि हुए हैं। माण्डूकेय का वर्णन प्रस्तुत साहित्य में निम्नलिखित स्थलों में मिलता है।

(१) ऐतरेय आरण्यक ३। १। ५॥ में कहा है—

इति ह स्माह ह्रस्वो माण्डूकेयः।

(२) ऋक्प्रा० का वचन है—

माण्डूकेयस्य सर्वेषु प्रश्लिष्टेषु तथा स्मरेत् ॥ २०० ॥

(३) अथर्वपरिशिष्ट ४३। ४। ४६॥ में कहा है—

माण्डूकेयं तर्पयामि।

(४) अथर्वप० ४९। १। ६॥ में ऋग्वेदीय शाखाओं का कथन करते हुए कहा है—

माण्डूकेयाश्चेति।

इन प्रमाणों से निश्चित होता है कि माण्डूकेय का काल ऐतरेय आरण्यक आदि से बहुत पुराना है। अतः मण्डूक का काल तो उस से भी पुराना होगा।

माण्डूकी शिक्षा का विषय।

मैं पूर्व लिख आया हूं कि मा० शि० का स्वतन्त्र सिद्धान्त बहुत थोड़ा है। अधिकांश भाग अन्य शिक्षाओं से मिलता है। अतः शिक्षाओं के सामान्य विषय पर फिर कभी लिखा जाएगा। यहां

केवल एक दो बातों पर प्रकाश डालना है। अन्य शिक्षाओं के समान मा० शि० १। १३, १४ में भी कहा है कि अमुक स्वर अमुक वर्ण=रंग वाला है। इस का क्या अभिप्राय है?

इस विषय पर दार्शनिक मत।

वैदिक दर्शनों में से वैषेशिक दर्शन में कहा है कि वर्ण द्रव्य का गुण है। ऐसा ही अन्य आर्य्य विद्वानों का भी विचार है। पश्चिम के तत्ववेताओं ने इस सम्बन्ध में अनेक वाद चलाए हैं। वे हैं भी एक दूसरे के विरोधी। एक विचार वहां भी है कि वायु-मण्डल में विभिन्न गति से ही पृथक् २ रंग उत्पन्न होते हैं। यही विचार इस शिक्षा में प्रकट किये गए हैं। अब रहा विचार कि यदि रूप=रंग गुण है, तो भिन्न २ स्वरों के भिन्न २ रूप क्यों है? इस का उत्तर यह है कि भिन्न २ स्वरों की गति परमाणुओं पर भिन्न २ प्रभाव डालती है। रूप तो प्रमाणुओं में पहले ही है, पर गति के प्रभाव से वह प्रकाशित हो जाता है। ये प्रमाणु सदा आकाश में उड़ते रहते हैं। उन्हीं से सम्बन्ध में आने पर स्वरें रूप उत्पन्न करती हैं। तभी कहा जाता है कि अमुक स्वर का अमुक रूप है।

मा० शि० में मनुस्मृति का एक श्लोक।

मा० शि० १६। ७॥ में एक श्लोक है—

यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥

यही श्लोक मनुस्मृति २। २१८॥ में आया है। भेद केवल इतना ही है कि मनुस्मृति के सब टीकाकारों ने द्वितीय पाद में

नरो वार्यधिगच्छति।

पाठ दिया है। यही मनु वाला पाठ या० २। ७३॥ में है। परन्तु नारद २। ८। २७॥ में माण्डूकी शि० वाला पाठ ही है। इस से प्रतीत होता है कि मनु का पाठ लेने में ना० और मा० ने मनु

की किसी अन्य शाखा का अनुकरण किया है। शिक्षाओं ने यह श्लोक मनु से ही लिया है, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं। मनु का काल अत्यन्त प्राचीन है, अतः शिक्षाओं ने यह श्लोक वहीं से लिया है। मनुस्मृति के अत्यन्त प्राचीन वा मौलिक होने पर "बार्हस्पत्यसूत्रम्" के Introductory Remarks में मेरा लेख देखो।

इस संस्करण के अन्त में मैंने तीन परिशिष्ट जोड़े हैं। पहले में या० वा ना० से मा० की तुलना दिखाई गई है। यह तुलना यद्यपि मूलपाठों की टिप्पणी में भी दर्शाई गई है तथापि पृथक् छपनी आवश्यक थी। दूसरे परिशिष्ट में निदर्शनों के पते दिये गये हैं। और तीसरे परिशिष्ट में छान्दस प्रयोग बताये गये हैं। अन्त में माण्डूकी शिक्षान्तर्गत प्रत्येक श्लोक के प्रथमार्द्ध वा द्वितीयार्द्ध की प्रतीकसूची दी गई है। इस से शिक्षाओं के भावी सम्पादकों को याज्ञवल्क्य, नारद वा माण्डूकी शिक्षा से पाठ मिलाने में बहुत सरलता होगी।

मा० शि० के तीनों हस्तलेख डा० ऐस० के० बलवेल्कर की कृपा से मुझे प्राप्त हुए थे। हस्तलेखों के देने की उदारता के लिये जिसे वे सदा ही दिखा रहे हैं, मैं उन को हार्दिक धन्यवाद देता हूं। अध्यापक राजारामजी ने अनेक स्थलों पर अपनी बहुमूल्य सम्मति से मुझे कृतार्थ किया है। इस के लिये मैं उन का अनुगृहीत हूं। ज्ञानचन्द्र जी बी० ए० ने इस पुस्तक का प्रूफपाठ करने की बड़ी कृपा की है।

आशा है परमकारुणिक भगवान् इन ग्रन्थों के प्रचार में मेरी सहायता करते हुए सदा मेरी रक्षा करेंगे। इत्योम्।

दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर। कार्तिक वदी ७, शनि सं० १९७८ अक्तूबर २२, १९२१	भगवद्दत्त

शुद्धिपत्रम् ।

भूमिका पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	२०	पिण्डत	पण्डित
७	१४	का	को
१०	१	पुरान	पुराना
मूलपाठ १	१२	प्रकाशस्तु	प्रकाशास्तु
४	१३	प्रयुञ्जानो	*प्रयुञ्जानो
६	३	करञ्जस्य	*करञ्जस्य
६	७	०लक्ष्येत्	लक्षयेत्
७	११	११	३१
८	७	।	॥२॥
८	८	॥३॥२	×
९	१३	ऽथनु०	ऽथानु०
१७	२४	२ तु०	२२. तु०
१७	२५	ना० २२।	ना० २।
१९	१२	अ णो०	अक्ष्णो०
२३	९	०ग्निम्नि०	०ग्निम्नामि०
२४	६	आगच्छन्	अगच्छन्
२४	११	पदसहस्रेणं	पदसहस्रेण
२४	२०	प, द, अगच्छन्वै०	का, ग, आगच्छन्वै

* यह अशुद्धि आगे भी कई स्थलों पर हो गई है। विज्ञपाठक स्वयं शुद्ध कर लें।

अथ माण्डूकी शिक्षा।

(अथर्ववेदीया)

तिस्रो वृत्तीरनुक्रान्ता द्रुतमध्यविलम्बिताः ।
यथानुपूर्वं प्रथमा द्रुता वृत्तिः[१] प्रशस्यते ॥ १ ॥
मध्यमैकान्तरा वृत्तिर्द्व्यन्तरा हि विलम्बिता ।
नैनां बुधः प्रयुञ्जीत यदीच्छेद्वर्णसम्पदम्[२] ॥ २ ॥
अभ्यासार्थे द्रुता वृत्तिरुपलब्धौ[३] विलम्बिता ।
मध्यमा तु प्रयोगार्थे न तद्वचनमन्यथा ॥ ३ ॥[४]
ऐन्द्री तु मध्यमा वृत्तिः प्राजापत्या विलम्बिता ।
अग्निमारुतयोर्वृत्तिः सर्वशास्त्रेषु निन्दिता ॥ ४ ॥[५]
दोषाः प्रकाशस्तु विलम्बितायां,
वर्णा द्रुतायां च[६] न सूपलक्ष्याः[६] ।
तस्माद्द्रुतां चैव विलम्बितां च,
त्यक्त्वा नरो मध्यमया प्रयुञ्ज्यात् ॥ ५ ॥

---

१. का, पृश्नेः । २. का, ०सम्पदाम् । ३. का, ०लब्धौर्वि० ।
४. तुल० या० १ । ५२ ॥ तथा ना० १ । ६ । २१ ॥ ५. तुल० या० १ । ५३ ॥
६—६. का, न च सूपलक्षाः । प, च नः सूपलक्षाः । ग, च न सोपलक्षाः ।

सर्वा एव तु निर्दोषा वृत्तयः समुदाहृताः ।
स्वधीतस्य सुवक्त्रस्य शिक्षुकस्य७ विशेषतः ॥ ६ ॥
सप्तस्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः ।
चत्वार एव छन्दोभ्यस्त्रयस्तत्र विवर्जिताः ॥ ७ ॥
षड्जऋषभगान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा ।
धैवतश्च निषादश्च स्वराः सप्तेह सामसु ॥ ८ ॥८
षड्जे वदति मयूरो गावो रम्भान्ति९ चर्षभे१० ।
अजा वदति गान्धारे क्रौञ्चनादस्तु मध्यमे ॥ ९ ॥११
पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पञ्चमे स्वरे ।
अश्वस्तु धैवते प्राह कुञ्जरस्तु निषादवान् ॥ १० ॥१२
कण्ठादुत्तिष्ठते षड्ज ऋषभः शिरसस्तथा ।
नासिकायास्तु गान्धार उरसो मध्यमस्तथा ॥ ११ ॥१३
उरः शिरोभ्यां कण्ठाच्च पञ्चमः स्वर उच्यते ।
धैवतश्च ललाटाद्वै१४ निषादः सर्वरूपवान् ॥ १२ ॥१५
पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः१६ शुकपिञ्जरः१६ ।

---

७. का, शिक्षकस्य । प, द, ग, तीनों हस्तलेखों में शिक्षुकस्य पाठ है । प्रतीत होता है काशी संस्करण के सम्पादक पं० युगलकिशोर ने आधुनिक लेख-शैली को देखकर स्वयं पाठ बदला है । अथर्ववेदीय गोपथब्राह्मण १ । २४ में "शिक्षुकाः" पाठ आया है । अतएव यहां भी मूल में शिक्षुकस्य ही युक्त है। तुल० मा० १४।१०॥ ८. तुल० ना० १ । २ । ५ ॥ ९. का, रम्भन्ति । १०. प, च ऋषभे । ११. तुल० या० १ । ८ तथा ना० १ । ५ ।३॥ १२. तुल० ना० १।५।४ ॥ १३. तुल० ना० १ । ५ । ५ ॥ १४. प, ०टाग्रे। १५. तुल० ना० १ । ५ । ६ ॥ १६. प, ऋषभस्तु कपिञ्जरः ।

कनकाभस्तु गान्धारो मध्यमः कुन्दसप्रभः ॥ १३ ॥१७

पञ्चमस्तु भवेत्कृष्णः पीतवर्णस्तु धैवतः ।

निषादः सर्ववर्णाभ इत्येते स्वरवर्णकाः ॥ १४ ॥१८॥ १ ॥

(२)

बाह्याङ्गुष्ठं तु क्रुष्टं स्यादङ्गुष्ठे मध्यमः स्वरः ।

प्रादेशिन्यां तु गान्धारो मध्यमायां तु पञ्चमः ॥ १ ॥१

अनामिकायां षड्जस्तु कनिष्ठायां तु धैवतः ।

तस्याधस्तात्तु यो ऽन्यः२ स्यान्निषाद इति तं विदुः ॥२॥३

प्रथमावन्तिमौ चैव वर्त्तन्ते छन्दसि स्वराः ।

त्रयो मध्या निवर्त्तन्ते मण्डूकस्य मतं यथा ॥ ३ ॥

द्वितीयं स्वरितम्प्राहुः षष्ठः प्रचित उच्यते ।

उच्चं विद्यान्निषादं तु नीचं षड्जमुदाहृतम् ॥ ४ ॥

उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितः प्रचितस्तथा ।

चतुर्विधः४ स्वरो दृष्टः स्वरचिन्ताविशारदैः ॥ ५ ॥५

स्वरे ज्ञात्वा यथास्थानं हस्तस्य स्पन्दनं स्मृतम् ।

निष्कृष्य हस्तं विन्यस्तं पाणौ दृष्टिं निवेशयेत् ॥ ६ ॥

किञ्चिद्यो६ नभसः स्त्रांसाद्बाहौ७ दृष्टिं निपातयेत् ।

प्रसार्य चाङ्गुलीः सर्वारोपयेत्करमण्डलम्८ ॥ ७ ॥६

---

१७. तुल० ना० १ । ४ । १ ॥ १८. तुल० ना० १ । ४ । २ ॥

१. तुल० ना० १ । ७ । ३ ॥ २. का, ऽन्त्यः । ग, न्त्य । प, त्य ।
३. तुल० ना० १ । ७ । ४ ॥ ४. द, प, ०विध । ५. तुल० ना० १ । ७ । १६ ॥ ६. ग, किंचिद्ग्रो । द, प, किंचिद्ग्रो अथवा किंचिद्ग्रो । ७. का, ग, बाहु ॥ ८. का, सर्वाश्चालयेत् ॥

न चाङ्गुलीभिरङ्गुष्ठमुपेयाद्दोषवित्ततः ।९

ऊर्द्ध्वमायुस्तमाकुञ्चमङ्गुष्ठं स्थापयेद्बुधः ॥ ८ ॥

नाधः शिरा१०नावनता१०नाङ्गुल्यः प्रतराः११स्मृताः ।

उत्तानं सोन्नतं किञ्चित्सुव्यक्ताङ्गुलिराञ्जितम्१२ ॥९॥१३

स्वरविद्धं करं कुर्यात्प्रादेशोद्देशगामिनम् ।

अङ्गुष्ठस्योत्तरे पर्वे यवस्योपरि यद्भवेत् ॥ १० ॥ १३

प्रादेशस्य तु तद्देशस्तन्मात्रं चालयेत्करम् ।

चलुर्नावा१४स्फुटी दण्डी स्वस्तिको मुष्टिरेव१५च ।११।१६

एते वै हस्तदोषाः स्युः परशुच्छेदस्तु सप्तमः ।१६

कूर्मोऽङ्गानीव संहृत्य चेष्टा१७दृष्टिं परं१७मनः ॥१२॥१८

न कम्पयेच्छिरः पादौ मुखदोषांश्च वर्जयेत् ।

नासिकायास्तु पूर्वेण हस्तं सञ्चालयेद्बुधः ॥ १३ ॥१८

सूक्ष्मान् वर्णान्प्रयुञ्जानो१९दक्षिणं श्रवणं प्रति ।

श्रुतिं वाचोऽनुगां कृत्वा वाचं कृत्वा मनोऽनुगाम् ॥

दृष्टिं हस्तानुगां कृत्वा ततः पदविदारभेत्२० ॥१४॥२१॥२

---

९. तुल० ना० १ । ६ । ५ ॥ १०. का, शिरस्ताछामे ॥ ११. द, प, ग, प्रतरा । १२. द, प, ०रांचितं । १३. तुल० या० १ । ४८, ४९ ॥ १४. का, चुलुनौं वा । १५. का, मुष्टिकाकृतिः । १६. तुल० या० १।४५॥ १७-१७. का, चेष्टां दृष्टिं दृढं । १८. तुल० ना० १ । ६ । १२, १३ ॥ १९. का, वर्णानुच्चरेद्वै । २०. का, पदामिवोच्चरेत् । २१. ग में अन्तिमार्द्ध मूल में नहीं है । किसी अन्य हाथ से ऊपर के हाशिये पर लिखा गया है ।

(३)

यथा वाणी तथा पाणी रिक्तं तु परिवर्जयेत् ।
यत्रैव तु स्थिता वाणी पाणिस्तत्रैव धार्यते ॥ १ ॥१
स्वरश्चैव तु हस्तश्च द्वावेतौ२ युगपद्भवेत् ।
हस्ताद्भ्रष्टः स्वराद्भ्रष्टो न वेदफलमश्नुते ॥ २ ॥३
हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम् ।
ऋग्यजुःसामनिर्दग्धो४ वियोनिमनुगच्छति५ ॥३॥६
ऋग्यजुःसामगादीनि हस्तहीनानि यः पठेत् ।
अनृचो ब्राह्मणस्तावद्यावत्स्वारं न विन्दति ॥ ४ ॥७
हस्तेनाधीयमानो यः स्वरवर्णान्प्रयोजयेत् ।
ऋग्यजुःसामभिः पूतो ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ५ ॥८
स्वरात्स्वरं संक्रमते स्वरसन्धिमनुल्बणम्९ ।
अविच्छिन्नं समं कुर्यात्सूक्ष्मं छाया तपोपमम्१० ॥ ६ ॥११
अक्षरज्ञो विरामज्ञः प्रत्यारम्भी तथैव च ।
स्वरमात्राविभागज्ञः स विप्रो मानमर्हति१२ ॥ ७ ॥ ३ ॥

१. तुल० या० १ । ४६ ॥ २. ग, द्वावेकौ । ३. तुल० या० १ । २५, २६ ॥ ४. का, ग, ०मभिर्दग्धो । ५. का, ०मधिगच्छति । ६. तुल० या० १ । ३१ ॥ ७. तुल० या १ । ४० ॥ ८. तुल० या०१।४२॥ ९. द, ०नुल्वणं ॥ १०. का, तथोपमम् । द, तमोपमं । ११. तुल० ना० १ । ६ । १८ ॥ १२. का, वक्तुमर्हति ।

(४)

आम्रपालाशबिल्वानामपामार्गशिरीषयोः ।
खादिरस्य करञ्जस्य कदम्बस्य तथैव१ च१ ॥ १ ॥४
अर्कस्य२ करवीरस्य कुटजस्य विशेषतः ।
वाग्यतः प्रातरुत्थाय३ भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ २ ॥४
तेनास्यकरणं सूक्ष्मं माधुर्यं चोपजायते ।५
न चास्य वदतो दोषान्६ कश्चिदप्युपलक्षयेत् ॥ ३ ॥
नात्युच्चैर्नाति वा नीचैर्निषण्णः७ सदने सुखम् ।
अव्यग्रामातितीक्ष्णेन कण्ठेन मृदुनादिना ॥ ४ ॥
प्रातर्वदेन्नित्यमुरः८ स्थितेन स्वरेण शार्दूलरुतोपमेन९ ।
माध्यंदिने कण्ठगतेन चैव चक्राह्वयैः कूजितसन्निभेन१० ॥५
तारं तु विद्यात्सवनं तृतीयं शिरोगतं११ तच्च सदा प्रयोज्यम् ।
मयूरहंसादि मृदुस्वराणां तुल्येन नादेन शिरः सुखेन ॥६॥
यथा व्याघ्री हरेत्पुत्रान् दंष्ट्राभिर्न च पीडयेत् ।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥१२
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या न१३मुक्ता१३न च पीडिताः१४ ।

---

१. का, च क्षीरिणः । २. का, द, ग, अर्कस्य । ३. ग, ०रुथ्थाय । ४. तुल० या० १ । ३५, ३६ ॥ ना० २ । ८ । ३, ४ ॥ ५. तुल० या० १।३७॥ ना० २ । ८ । ५ ॥ ६. का, प, दोषात् । ग, त् को हटा न् बनाया गया है । ७. का, ०घोषणाः । ग, निषंणः । प, द, निषणः । ८. प, ०मुर । ग, मूर । ९. प, क्षतोपमेन । १०. प, कूजितः० । ग, ०सन्निभेद, द के ऊपर काटने का '=' चिन्ह है । ११. का, शिखण्डिना ॥ १२. तुल० या० २ । १०२ ॥ ना० २ । ८ । ३० ॥ १३. प, नाव्युक्ता । नारद में अव्यक्ता है । माण्डूकी १२ । ८ में अव्यक्तान् । १४. का, पीडयेत् ।

सम्यग्वर्णप्रयोगेन१५ ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८ ॥१६
शनैरध्वसु वक्त्रेण न परं१७ योजनाद् व्रजेत् ।
न हि पार्ष्णिहता१८वाणी प्रयोगान्वक्तुमर्हति ॥ ९ ॥१९
मान्ते मुष्ट्याकृतिं कुर्यात्तकारान्ते२० विश्लेषयेत् ।
नखस्य दक्षिणे पार्श्वे नकारान्तं२१ निवेदयेत्२२ ॥१०॥२३
कटान्तयोस्तु२४ कर्त्तव्यमङ्गुल्यग्रप्रकुञ्चनम् ।
ङणनान्ते तथैव स्यात्२५ पान्ते२६ त्वङ्गुलिपीडनम्॥११॥
ऊर्द्ध्वक्षेपापि२७ या मात्रा अधः क्षेपापि या भवेत् ।
एकैकामुत्सृजेद्धीरः प्रचिते तूभयं२८ तथा ॥ १२ ॥ २९
ह्रस्वानुस्वारकरणे त्वङ्गुष्ठाग्रप्रकुञ्चनम् ।
दीर्घे तु सूरयः प्राहुः प्रादेशिन्याः प्रसारणम्३० ॥१३॥३१
पदान्तरं न कुर्वीत३२ संहितायां प्रयोगवित् ।
मांसे३३ मांसं३४ विजानीयात् पांसे३५पांसं विनिर्दिशेत् ।१४

---

१५. ग, प्रयोगेण । प, सम्यक्वर्णः प्र० । १६. तुल० ना० २ । ८ । ३१ ॥ १७. ग, पठं । १८. का, द, पार्ष्णिहिता । प, पाणिर्हिता । ग, पाणिर्हता । देखो इस श्लोक पर प्रो० कीलहार्न का लेख, इण्डियन अण्टीक्वेरी, भाग ५, सन् १८७६, पृ० १४१ । प्रो० कीलहार्न की कल्पना ठीक है । १९. तुल० ना० २ । ८ । १५, १७ ॥ २०. ग, ० रान्तं । २१. का, रान्ते । २२. का, प्रयोजयेत् । प,ग, निवेशयेत् । २३. तुल० या० १ । ५४ ॥ २४. ग, कंठान्तयोस्तु । २५. का, प, तथैवास्यात् । २६. प, प्रान्ते । २७. का, क्षेपाश्च । २८. ग, नूभयं । २९. तुल० या० १ । ५८ ॥ ३०. का, देशिन्याः सुप्रसारणम् । ३१. तुल० या० १ । ५९ ॥ ३२. ग, कुर्वेत । ३३. का, नैव । ३४. प, मांसे । ग, मांस । ३५. का, प, पांसेन् । ग, पासं ।

यथा नौ स्रोतसां३६ मध्ये समं गच्छति संयुता ।
तैलधारेव वा वक्त्रं३७ तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत् ॥१५॥४॥

(५)

उदात्ताच्च न कर्त्तव्यमुदात्तं स्वरितं तथा ।
नीचान्नीचतरन्नास्त्युच्चादुच्चं न विद्यते ॥ १ ॥
उच्चादुच्चतरन्नास्ति नीचान्नीचतरं कुतः ।१
स्वरितात्स्वरितन्नास्ति कम्पिताच्चैव कम्पितम् ।
यदुदात्तमुदात्तं तद्यत्स्वरितं तत्पदे भवति नीचम् ॥ २ ॥२
यन्नीचं नीचमेव तद्यत्प्रचयस्थं तदपि नीचम् ॥ ३ ॥२
स्वरितानां३ मनह्लादमुदात्तानामताडनम् ।
अनुदात्तमनाधिष्ठं४ शषसानामरोमशम् ॥ ४ ॥
षड्धातुस्वरितादेशे५ उदात्तश्च५ चतुर्विधः ।
द्विविधश्चानुदात्तश्चैतच्छास्त्रेण चोदितम्६ ॥ ५ ॥
स्वरित्प्रभवं७ प्रचितात्स्वरितं८ विद्यत९ उदात्तं वा ।
अनुदात्तमेव तद्विद्याद्यद्दतं१० च तद्विद्धि यत्प्रचितम् ॥ ६ ॥
स्वरितात्पराणि यानि स्युरनुदात्तानि११ कानिचित्११ ।
सर्वाणि प्रचयं यान्ति१२ ह्युपोदात्तं न विद्यते ॥ ७ ॥१३

---

३६. द, प, श्रोतसां । ३७. का, वाणी ।

१. तु० या० २ । २७ ॥ ना० १ । ८ । ६ ॥ २. ना० २ । ३ । १ ॥
३. अनुदात्त । ४. प, ०धिष्ठं । ५. क, ०देवह्युदा० । ६. का, ०त्तश्च ह्येतच्छा ०चोदितम् । ७. प, इस के आगे प्रचितं देता है । ८. का, ०तमेव । ९. का, नास्ति । १०. का, द्यादतं । ११. का, ०त्तान्युदात्तवत् । १२. प, यातु । १३. तु० ना० २ । ७ । ८ ॥

स्वरितावधृत१४ उदात्ते परस्त्रिपूर्वो विक्रमोच्युते ।
स्वरितावधृत१५ उदात्ते१५ पादः स्यात्स हि विक्रमः ॥८॥
ननु धारयेद् धृतमुपस्पर्शमुपोदात्तम्१६ निपातयेत् ।
एकाक्षरे१७ पतनं१८ न१८ च धृतमुच्चारयेत्स्वरे वापि ॥९॥
न्यासमेवादितः कुर्यान्नीयतेषु बहुष्वपि ।
शेषमाद्यवदुक्त्वा तु तत्पदेषु समेषु च ॥ १० ॥
स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित उच्यते ।
व्यञ्जनान्यनुवर्त्तन्ते यत्रासौ तिष्ठति स्वरः ॥ ११ ॥१९॥५॥

(६)

स्वर उच्चः स्वरो नीचः स्वरः स्वरित एव तु ।
स्वरप्रधानं त्रैस्वर्य्यमाहुरक्षरचिन्तकाः ॥ १ ॥१
द्वयोस्तु स्वरयोः सन्धावेकीभावो यदा भवेत् ।२
उदात्तोऽथनुदात्तस्य३ वशं गच्छति सन्धिषु ॥ २ ॥
दुर्बलस्य यथा राष्ट्रं हरते बलवान्नृपः ।
स्वरो व्यञ्जनमासाद्य हरते नात्र संशयः ॥ ३ ॥४
आख्यातानां प्रयोगेषु पूर्वस्वरमुपस्थितम्५ ।
षोडशाक्षरमर्यादं यद्योगे स्वरमुद्धरेत् ॥ ४ ॥

---

१४. प, ०तावद्धृत । इसके आगे उद्धत अथवा उद्धृत अधिक है । १५. प, ०द्धृतोदात्ते । १६. का, वृतमु० ॥ १७. प, च अधिक है ॥ १८. का, धारयेन्न ॥ १९. तु० या० २, २८, २९ ॥ ना० २ । ५ । १ ॥

१. तु० या० २ । २९ ॥ ना० २ । ५ । २ ॥ २. तु० या० २ । ८ ॥ ३. का, ऽप्यनुदा० ॥ ४. तु० या० २ । २६ ॥ ना० २ । ५ । ३॥ ५. प, पूर्वपदमु० ॥

नीचं तु स्वरपूर्वं तु नीचावग्रहमेव च।
हन्तव्यं तद्विजानीयादुच्चावग्रहवर्जितम् ॥ ५ ॥
नातिहन्न्यान्न निर्हन्यान्न६ प्रगायेन्न कम्पयेत् ।७
एतौ द्वौ युगपत्साध्यावेतच्छास्त्रेण चोदितम् ॥ ६ ॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥ ७ ॥८
वर्णानां तु प्रयोगेषु करणं स्याच्चतुर्विधम्।
संवृतं विवृतं चैव स्पृष्टमस्पृष्टमेव च ॥ ८ ॥
स्पर्शानां कारणं स्पृष्टमन्तस्थानामतो ऽन्यथा।
यमानां संवृतं९ प्राहुर्विवृतं च स्वरोष्मणाम्१० ॥ ९ ॥

(७)

सप्तस्वरान् प्रवक्ष्यामि तेषां चैव बलाबलम्।
लक्षणानि च सर्वेषां युक्तस्तानि१ निबोध मे१ ॥ १ ॥२
अभिनिहितः प्राक्श्लिष्टो३ जात्यः क्षैप्रश्च पादवृत्तश्च।
तैरोव्यञ्जनः षष्ठस्तिरोविरामश्च सप्तमः ॥ २ ॥२
ए ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो रेफितश्च यः।
अकारं यत्र लुम्पन्ति तमभिनिहितं विदुः ॥ ३ ॥४
इकारं५ यत्र पश्येयुरिकारेणैव संयुतम्।

६. का, नाभि० ॥ ७. तु० ना० १।६।१५ ॥ ८. तु० या० २।११ ॥
९. का, स्वरितम् ॥ १०. का, त्रिरो० ॥

१. ग, युक्तस्थानानि बोधत ॥ २. तु० या० १।७१, ७२ ॥
ना० १।८।५, १० ॥ ३. का, प्राश्लिष्टः ॥ ४. तु० या० १।७३ ॥
ना० २।१।३ ॥ ५. द, ईकारं; ग, इकारो ॥

उदात्तो ऽप्यनुदात्तस्य प्राक्श्लिष्टो३ ऽभीन्धतामपि ॥४॥६
सयकारं समं७ वाऽप्यक्षरं स्वरितं भवेत् ।
न चोदात्तं पुरस्तात्स्याज्जात्यः८ स्वर्दृश्य एव तु ॥ ५ ॥९
इ१० उ१० वर्णौ यदोदात्तावापद्येते यवौ क्वचित् ।
अनुदात्तप्रत्यये११ स्याद्विद्धि क्षैप्रस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥१२
स्वरिते स्वरितं यत्र विवृत्या१३ यत्र संहिताः१४ ।
तं पादवृत्तं जानीयात्ते त्वस्मिन्यवमादधुः ॥ ७ ॥१५
उदात्तपूर्वे सार्द्धे१६ तु द्वितीये अक्षरे१७ तु यः ।
तैरोव्यञ्जन इत्येष सारः१८ स्याद्दधिमाध्विति१९ ॥ ८ ॥२०
अवग्रहात्परं यत्र स्वरितं स्यादनन्तरम् ।
तिरोविरामं जानीयात् प्रजापतेर्निदर्शनम् ॥ ९ ॥२१
द्वयोरुदात्तयोर्मध्ये नीचो२२ यस्स्यादवग्रहः२२ ।
ताथाभाव्यो२३ भवेत्कम्पस्तनूनपान्निदर्शनम् ॥ १० ॥२४

६. तु० या० १ । ७५ ॥ ना० २ । १ । ६ ॥ ७. का, द, सवं; ग, संव; प, समं व्याप्यक्षरं ॥ ८. का,पुरस्तस्य जात्यः । प, पुरस्तास्या जात्य० ॥ ९. तु० या० १ । ७३ ॥ ना० २।१।१ ॥ १०. द, ई ऊ ॥ ११. द, अनुदात्तः प्रत्ययः ॥ १२. या० १ । ७४ ॥ ना० २ । १ । २ ॥ १३. का, विवृत्यां ॥ १४. का, ग, संहिता ॥ १५. या० १ । ७८ ॥ ना० २ । १ । ७ ॥ १६. प, स्वार्ये । ग, सार्ये ॥ १७. ग, अक्षये ॥ १८. प, ग, सार ॥ १९. प, ०मध्वांति ॥ २०. तु० या० १ । ७६ ॥ ना० २ । १ । ४ ॥ २१. तु० या० १ । ७७ ॥ ना० २ । १ । ५ ॥ २२. का, नीचोऽस्ति यदवग्रहः । प, द, ग, ०यस्यात् ॥ २३. प, ग, तथाभाव्यः ॥ २४. तु० या० १ । ७८ ॥

(८)

ताथाभाव्यस्तु१ तालव्यो न कम्पः स्वरसञ्ज्ञकः।
स तालव्यो भवेत्कम्प एजातीति२ निदर्शनम् ॥ १ ॥
सर्वतीक्ष्णोऽभिनिहितस्ततः प्राक्श्लिष्ट३ उच्यते।
ततो मृदुतरौ स्वारौ४ जात्यः५ क्षैप्रश्च तावुभौ ॥ २ ॥
ततो मृदुतरः६ स्वारस्तैरोव्यञ्जन७ उच्यते।
पादवृत्तो मृदुतर इति स्वारबलाबलम् ॥ ३ ॥
उपन्यासस्तु कर्त्तव्यः कण्ठे निक्षेपसञ्ज्ञकः८।
उपन्यासात्परं हन्याद्भूमौ शङ्कुपदं यथा ॥ ४ ॥
प्राक्श्लिष्ट९ जात्यक्षैप्राणान्१० यश्चाभिनिहितश्च यः।
उदात्तोपस्थिते११ तेषामेकदेशं प्रकम्पयेत्१२ ॥ ५ ॥
हलन्तादुत्तरो यस्तु पदादवग्रहेषु च।
मिश्रस्तस्याद्य१३ इत्येषो१४ योऽन्यः स य इति स्मृतः ॥६॥
पादादौ च पदादौ च संयोगावग्रहेषु च।
यः शब्द इति विज्ञेयो योऽन्यः स य इति स्मृतः ॥ ७ ॥१५
पुनरन्तश्च सवितश्च प्रातर्या रेफिता च संहिता यत्र।

---

१. का, प, ग, तथा० ॥ २. का, एजतीति । ग, एजातोति ॥ ३. का, प्राश्लिष्ट ॥ ४. का, चैव ॥ ५. प, ग, जात्य ॥ ६. प, द, मृदुतर ॥ ७. प, ०तौरो० ॥ ८. प, संक्षिकः ॥ ९. का, द, प्राश्लिष्ट ॥ १०. का, जात्यक्षैप्राश्रयश्चाभि० ॥ ११. द, ०स्थितो ॥ १२. का, प्रकल्पयेत् । प, प्रकंपयेत् ॥ १३. का, यस्य स्वस्माद्य। द, ग, मिश्रस्वस्याद्य ॥ १४. द, इत्येको ॥ १५. तु० या० २ । ५९ ॥ ना० २।२।१६ ॥

रेफवन्ति पदान्यत्र[१६] रेफे[१७] तद्रेफितं[१८] पदम् ॥ ८ ॥
अन्तः[१९] शब्दस्तु यः कश्चिदाद्युदात्तो भवेद्यदि ।
न तत्र रेफमिच्छन्ति संहितायां पदेषु च ॥ ९ ॥
अनुस्वारं हि दोषस्तु हकारादिषु वर्जितः ।
अंहोमुचो वातरंहा दँहश्चेति निदर्शनम् ॥ १० ॥
अनुस्वारास्तु[२०] कर्त्तव्या ह्रस्वदीर्घप्लुतास्त्रयः ।
अयँ राजा पशोर्मांसं क्षत्रियाणां धनूँषि च ॥ ११ ॥

(६)

विवृत्तयस्तु[१] विज्ञेयाश्चतस्रस्त्वनुपूर्वशः ।
नामभिस्तु पृथग्ज्ञेयास्तासां[२] वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १ ॥[३]
पिपीलिका पाकवती तथा वत्सानुसारिणी ।
अनुसृतवत्सा चैव चतस्रो हि विवृत्तयः ॥ २ ॥[४]
वत्सानुसृता ह्रस्वा जघने वत्सानुसारिणी चाग्रे ।
पाकवती चोभयतः पिपीलिकमध्याप्युभयदीर्घा[५] ॥ ३ ॥[६]
पूर्वं ह्रस्वं परं दीर्घमक्षरं यत्र दृश्यते ।
सा वत्सानुसृता ज्ञेया व्यत्यासेत्यनुसारिणी[७] ॥ ४ ॥
उभाभ्यामेव ह्रस्वाभ्या यवमध्यां विनिर्दिशेत् ।

---

१६. का, पदान्यस्य ॥ १७. का, स्याद्धै । ग, रेफ ॥ १८. का, प, ताद्रिफितं । ग, तद्रैफितं ॥ १९. ग, अन्त ॥ २०. का, ०राश्च ॥

१. का, ०यश्च ॥ २. प, द, ग, पृथक्क्षेया० ॥ ३. तु० ना० २ । ४ । १ ॥ ४. तु० या० २ । ९ ॥ ५. प, ०मध्याथुभय । ग, पिपीलिकामध्या० ॥ ६. तु० या० २।११ ॥ ना० २।४।२ ॥ ७. द, ०सेत्वनु० ॥

ताभ्यामेव तु दीर्घाभ्यां विज्ञेया सा पिपीलिका ॥ ५ ॥
अभ्रमध्ये यथा विद्युद्दृश्यते मणिसूत्रवत् ।
एषच्छेदो विवृत्तीनां यथा बालेषु[८] कर्त्तरि[९] ॥ ६ ॥[१०]
आपद्यते मकारो यरवोष्मसु[११] प्रत्ययेष्वनुस्वारम् ।[१२]
न भवति लकारे परसवर्णः स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिः ॥ ७ ॥
ऊष्मस्थौ यत्र दृश्येते स्वरवर्णौ स्वरोदयौ ।
ऋलृवर्णौ तथा ज्ञेयौ स्वरभक्तीति संस्थितौ ॥ ८ ॥
तां ह्रस्वां प्रतिजानीयाद्यथा मात्रा भवेद्यदि ।
सम्यगेनां विजानीयाद्[१३] द्वौ दोषौ परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥
सम्यगेनां यदा पश्येच्छतबलिशेति[१४] निदर्शनम् ।
अकारं चाप्युकारं च विच्छिन्नं विवृतं तथा ॥ १० ॥
करिणी कर्विणी[१५] चैव हरिणी हारितेति च ।[१६]
तथा हंसपदा नाम पंचताः स्वरभक्तयः ॥ ११ ॥[१७]
करिणीं रहयोर्विद्यात्कर्विणीं लहकारयोः ।

---

८. प, कालेषु ॥ ९. का, ग, कर्त्तरी । द, में ०रि ०पाठ है । यहां (दीर्घ) ईकार का चिन्ह पतली मसी में पीछे से दिया गया है ॥ १०. तु० या० २ । ७ ॥ ना० १ । ६ । ११ ॥ ११. प, यरावाष्मस्तु । यह पुरानी लेखविधि के अनुसार यरवोष्मस्तु बनेगा ॥ १२. तु० ना० २ । ४ । ४ ॥ १३. प, द, ग, विजानीया ॥ १४. प, द, ०छतबलशेति । ग, छतवल्शेति ॥ १५. प, करिणीं ॥ १६. का, करिणीं कुर्विणीं चैव हारिणीं लहकारयोः ॥ १७. तु० या० २ । १३ ॥ का, में ११वें श्लोक का उत्तरार्द्ध और १२वें का पूर्वार्द्ध नहीं है ॥

हरिणीं१८ रषयोर्विद्याद्धारितां१६ लशकारयोः ॥ १२ ॥२०
या तु हंसपदा नाम सा तु रेफषकारयोः ।२१
या तु रेफशकारी स्यात्काकिनीं तां विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥ ६ ॥

(१०)

ऋकारप्रत्ययो रेफः संयुक्तः शषसैः सह ।
आद्यस्तत्र क्रमो ज्ञेयो न परो बोधितो बुधैः ॥ १ ॥
रेफोष्मणां संयोगे स्वरभक्तिरक्रमश्चैत्र ।
तत्रोदाहरणानि प्रदर्शनं वर्षबर्हिश्च१ ॥ २ ॥
रेफं स्वरोदये विद्याद्दकार२ व्यञ्जनोदये ।
स्वरव्यञ्जनयोर्मध्ये रेफमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥
ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥ ४ ॥३
यद्योभाव प्रसंधानमुकारादि परं पदम् ।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥ ५ ॥४
षत्वणत्वमुपाचारो दीर्घीभावस्तथैव च ।
यस्मिन् पदे निपद्यन्ते तत्समासाद्य५ लक्षणम् ॥ ६ ॥६
नकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च पर संस्थिते७ ।

---

१८. का, हरिणी ॥ १६. का ऋष० ॥ २०. तु० या० २ । १४ ॥
२१. तु० या० २ । १५ ॥

१. का वर्षोबर्हिश्च । प, वर्षबर्हिषश्च । ग, वार्षाबाहिषश्च ॥
२. प, ग, विद्याद्दकारं ॥ ३. तु० या० २ । ५३ ॥ ना० २ । ५ । ४ ॥
४. तु० या० २ । ५४ ॥ ना० २ । ५ । ६ ॥ ५. प, ग, तत्समापाद्य ॥
६. का में ६ठा श्लोक पहले और ५वां पीछे है ॥ ७. ग, पद्सं० ॥

रङ्गं वर्णं विजानीयान्न ग्रसेत्पूर्वमक्षरम् ॥ ७ ॥८

रङ्गं वर्णं यदा पश्येद्द्विवृत्त्या सह संस्थितम् ।
व्यञ्जनान्तं विजानीयाद्भ्रोमाँ९ इति निदर्शनम् ॥ ८ ॥

यथा सौराष्ट्रिका नारी अरॉं१० इत्यभिभाषते ।
एवं रङ्गाः प्रयोक्तव्या ङकारपरिवर्जिताः ॥ ९ ॥११

नासादुत्पद्यते रङ्गः कांसेन१२ समनिस्वनः१३ ।
मृदुश्चैव१४ द्विमात्रं स्याद् वृष्टिमाँ इति निदर्शनम् ॥१०॥१५

संयुक्तस्य तु यत्पूर्वं तद्ध्रस्वंलघुं१६ विजानीयात् ।
तत्संयोगोत्तरं विद्याद् गुर्वन्यत्र१७ नियोगतः ॥११॥१०॥

(११)

मात्रैकं१ लघु विज्ञेयं तत्संयोगपरं गुरुम् ।
सपरं२ व्यञ्जनान्तं च३दीर्घस्तु प्लुत एव च ॥ १ ॥

स्पर्शानामुत्तमैः स्पर्शैः संयोगाश्चेदनुक्रमात्४ ।
आनुपूर्व्या यमांस्तत्र५ जानीयाच्चतुरस्तथा ॥ २ ॥

रुक्मेति प्रथमं विद्यान्नृचेत्यपरं६ विदुः ।
तृतीयं पद्ममित्याहुः शंखध्ममिति७ चोत्तमम्७ ॥ ३ ॥

---

८. तु० ना० २ । ४ । ५ ॥ ९. द, ०द्भ्रोमँ । ग, ०द्रोमां ॥ १० द, ग, अरँ ॥ ११. तु० या० २ । ९७ ॥ ना० २ । ४ । ६ ॥ १२. का, कंसेन ॥ १३. ग, स्वरः ॥ १४. का, मृदुं चैव ॥ १५. तु० या० २ । १०१ ॥ ना० २ । ४ । ८ ॥ १६. का, तद्ह्रस्वं । प, तस्वं । द, ग, तध्रास्वं ॥ १७. द, ग, गुर्वैन्यत्र । का, कुर्वेन्त्यत्र ॥

१. प, मात्रकं । ग, मातृकं ॥ २. का, मपरं ॥ ३. प, स्थ ॥ ४. का, संयोगाच्चेद० ॥ ५. प, द, ग, यमास्तत्र ॥ ६. ग, देसरमं ॥ ७. का, शङ्ध्नमिति० । प, शंखद्धयमीति० । ग, शंखध्मति चोदितं ॥

वर्गान्ताः श ष स प्रथमाः संयुक्ता यदा स्युरभिधेयाः ।
लघुशास्त्रदोषतत्त्वज्ञैर्यमदोषास्तथा हि परिहार्याः ॥ ४ ॥८

वर्गान्ता यत्र दृश्यन्ते शषसैः सह संयुताः ।
यमास्तत्र निवर्त्तन्ते श्मशानादिव बान्धवाः ॥ ५ ॥९

संयोगस्य परं स्वार्यं१० परं संयोगनायकम् ।
संयुक्तस्य तु वर्णस्य न११ स्वरं पूर्वमिष्यते ॥ ६ ॥१२

स्वरणं१३ पतनं१४ चैव१५ वोत्थानेषु१६ समेषु च ।
एवमेव१७ पदे दृष्टं न पूर्वाङ्गे क्वचिद्भवेत् ॥ ७ ॥

दारुसङ्घातवत्श्लिष्टं१८ संयोगवशवर्त्तिनाम् ।
वर्णानां युगसम्पन्नमेकं वर्णमिवोत्सृजेत् ॥ ८ ॥

वर्णा१९ विंशतिरेकश्च येषां द्विर्भाव इष्यते२० ।
प्रथमा मध्यमा चान्त्या यवलाः२१ श ष सास्तथा ॥ ९ ॥

न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित् ।
न च वर्गद्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन ॥ १० ॥२२

चतुर्थं तु तृतीयेन द्वितीयं प्रथमेन तु ।
आद्यमन्त्यं तृतीयं च स्वाक्षरेणैव२३ पीडयेत् ॥ ११ ॥२४

---

८. का में लुप्त ॥ ९. तु० या० २। ११४ ॥ ना० २। २। ९ ॥ १०. प, सवार्यं। द, ह्वार्यं। ग, कार्यं। ११. ग, तत् ॥ १२. तु० या० २। २२ ॥ ना० २। २। १४ ॥ १३. प, ग, स्मरणं ॥ १४. ग, पवनं ॥ १५. प, द, ग, चै ॥ १६. द, वोत्क्षातेषु। ग, वोक्षवातेषु ॥ १७. का, एकमेव ॥ १८. द, ०वाक्लिष्टं। प, ०धाटवच्छ्लिष्टं ॥ १९. ग, वर्णं ॥ २०. ग, उच्यते ॥ २१. का, ग, यलवाः। प, द, यरलवाः। द में इसे काट कर हाशिये पर उसी हाथ से "यवलाः इति पाठः" लिखा है ॥ २२. तु० ना० २।२।६ ॥ २३. प, साक्षरणैव ॥ २४. तु० या० २। १२२। ना० २२। २। ७ ॥

(१२)

दृप्सो[१] ऽप्सरायामपृशब्दे[२] विश्वप्स्न्या च[३] विरॅप्शिने ।
काश्यपो ऽभिनिधानानामागमं[४] प्रतिषेधते ॥ १ ॥

यत्र चोभयतः स्पर्शाः संयुक्ताः शषसैः सह ।
आद्यस्तत्र क्रमो ज्ञेयो न परो बोधितो बुधैः ॥ २ ॥

ऋवर्णरेफसंयुक्तं स्वरितं स्यादनन्तरम् ।
ऋकार रेफसंयुक्तं यत्पूर्वं व्यञ्जनोदये[५] ॥ ३ ॥

ऋकारे लघु तद्विद्याद्रेफे तद्गुरुसंज्ञकम्[६] ।
न क्रमते स्वरयमयोर्न च वर्गसवर्णयोर्न च विरामे ॥ ४ ॥

न च रेफानुस्वारे विसर्जनीये तु सर्वत्र ।
ब्रुवन् भ्रुवौकर्णललाटनासिका,
न कम्पयेदोष्ठचलुर्न निर्भुजेत् ।
मुखं न विक्लिश्य न नम्रवक्त्रजो,
न चापि संदष्टहनुर्न बाह्यवाक् ॥ ५ ॥

न रुद्वाक्[७] स्यान्न च उत्स्वरं[८] वदेत्,
न चानिमेषो न च गर्वमाचरेत् ।
गजन्यवेषी बलवानतन्द्रितो,
व्यपेतरोष श्रमशोकहर्षभीः ॥ ६ ॥

---

१. का, दृप्सौ । ग, द्रप्सो ॥ २. का, ऽप्सरायामशब्दे । प, प्सरायामत्शब्दे । ग, प्सराभ्यामपृशब्दे ॥ ३. का, ०त्र ॥ ४. का, ऽभिनिघातानां० ॥ ५. का, ०दयेत् ॥ ६. प, द, ०संज्ञिकम् ॥ ७. प, द, रुद्य० ॥ ८. ग, चंडस्वरं ॥

न चानुकूजेत्पदमादितो९ ब्रुवन्,
न नासिका नित्यमनुष्ठितं वदेत् ।
न चापदान्ते श्रमपीडितः श्वसेन्,
न चोच्छ्वसेदुक्तपदोऽप्यभीक्ष्णशः१० ॥ ७ ॥
नातिनिष्पीडयेद्वर्णान्न चाव्यक्तानुदाहरेत् ।
समान्श्लक्ष्णानसंदिग्धान् वर्णानुच्चारयेद्बुधः ॥ ८ ॥
प्रथमानूष्मसम्पन्नान्द्वितीयानिव दर्शयेत् ।
तथैतान् प्रतिजानीयाद्यथा मत्स्यान् क्षुरोऽप्सरान्११॥९॥१२
तथैव पञ्चमानाहुरागमो यत्र१३ दृश्यते ।
द्वितीयानेव तान्कुर्याद् यस्मिन्सीतेति निदर्शनम् ॥१०॥१४

(१३)

अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण यो वर्णः समुदीर्यते ।
स एक मात्रो द्विस्तावान्१ दीर्घस्तु प्लुत उच्यते ॥ १ ॥
अवग्रहे ऽर्द्धमात्रं२ स्यात्कालो मात्रा पदान्तरे ।

---

९. ग, चातिकुजेसत्दमा०॥ १०. ग, ०भीक्षशः॥ ११. का,ग, क्षरोप्सरान् ॥ १२. तु० ना० २ । ५ । ११ ॥ १३. द, यत्र न ॥ १४. चौथे श्लोक से श्लोकों की अङ्क गणना में सब हस्तलेखों में भेद है । हमने द को आदर्श माना है । प का इस से इतना ही भेद है कि चौथा अङ्क "सर्वत्र" पर समाप्त होता है । ग में गणना दो दो अर्द्धों को लेकर क्रमशः चली गई है और अन्तिम अर्द्ध श्लोक को भी पहले के समान १० ही माना है ।

१. द, हाशिये पर द्वि के स्थान में ह्रस्व किया गया है ॥ २. प, द, अर्द्ध० । ग, ऽर्द्ध ॥

अर्द्धर्चे द्वे तथा पादे त्रिमात्रं स्यादृगन्तरम् ॥ २ ॥[३]
चाषस्तु वदते मात्रं द्विमात्रं वायसोऽब्रवीत्।
शिखी त्रिमात्रं विज्ञेय एष मात्रा परिग्रहः ॥ ३ ॥[४]
क्वचित्पादविभागेन क्वचिदर्द्धे[५] क्वचित्पदे।
क्वचिदर्थे क्वचिच्छब्दे विरामः पञ्चधा स्मृतः ॥ ४ ॥
छन्दस्येते प्रयुज्यन्ते क्रमेण चेपसंज्ञकाः[६]।
सविरामं प्रयोक्तव्या येन वृत्तिर्न विद्यते[७] ॥ ५ ॥
सञ्ज्ञाने[८] भूयसो दोषान्प्रवक्ष्यामि निबोधत।
स्वरस्य सन्दर्शनमनुस्वार[९] यमावपि ॥ ६ ॥
विच्छिन्नत्वं विक्षणत्वं[१०] सुशीमं सोमसत्सरु[११]।
ईकारेणाव[१२] गृह्णीयात्प्राति शुक्रेति पञ्चमम् ॥ ७ ॥
विश्वानामूष्मसन्देहे अर्द्धर्चे[१३] स्यान्नपुंसकम्।
पुरस्तादुपरिष्टाद्वा सर्वे विश्वा निरूष्मकाः ॥ ८ ॥
वसुधामानि रूपाणि विश्वानि भुवनानि च।
येषां पश्चादुपरिष्टाद्वा सर्वे विश्वा निरूष्मकाः ॥ ९ ॥[१४]
नकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च परसंस्थिते।
ह्रस्वोदात्तः[१५] प्रयोक्तव्यः शषसैः[१६] प्रत्ययेषु च ॥१०॥[१३]

---

३. तु० या० १। १३, १४ ॥ ४. तु० या० १। १७, १८ ॥ ५. ग, ०द्वर्थं। ६. प, द, संज्ञिकाः (?)। ग, संसकाः ॥ ७. ग, दृश्यते ॥ ८. ग, संज्ञाते ॥ ९. का, सन्दर्शनञ्च ह्यनुस्वार ॥ १० ग, विक्षिणत्वं ॥ ११ प, का, सोममत्सरु । १२. ग, इकारेण० ॥ १३. ग, ऽर्द्धर्चे ॥ १४. का, में विलुप्त है ॥ १५. का, ह्रस्वोमात्रः ॥ १६. का, ग, श ष स। द, श ष सः ॥

(१४)

द्वौ तकारौ थकारौ च यमो[१] नेति[१] च पञ्चमः ।
अत्स्ना[२] इति च संयोगमाहुरक्षरचिन्तकाः ॥ १ ॥
ककारान्ते पदे पूर्वे ङकारे[३] प्रत्यये परे ।
ङकारस्यागमं कुर्याद्वाङ्क्म इति निदर्शनम् ॥ २ ॥
टकारान्ते पदे पूर्वे णकारे[३] प्रत्यये परे ।
णकारस्यागमं कुर्याद् वण्महाँ[४] इति निदर्शनम् ॥ ३ ॥
तकारान्ते पदे पूर्वे नकारे[३] प्रत्यये परे ।
नकारस्यागमं कुर्याद् यत्न इति निदर्शनम् ॥ ४ ॥
पकारान्ते[५] पदे पूर्वे मकारे प्रत्यये परे ।
मकारस्यागमं कुर्यात् त्रिष्टुम्म इति निदर्शनम् ॥ ५ ॥
अन्त्यं कटतपं दृष्ट्वा परं ङणनमं तथा ।
आत्मपञ्चमसंयोगमाहु रक्षरचिन्तकाः ॥ ६ ॥
आम्नायात्प्रपदो प्रपदो भवति निर्भयः ।
निर्भयो मधुरो भवति माधुर्यात्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ७ ॥
आम्नायकरणं श्रेष्ठं वर्णानां चावधारणम् ।
अप्रमत्तश्च स्वार्येत एतदाचार्यशासनम् ॥ ८ ॥
आम्नायशास्त्रसम्पन्नं शास्त्रमाम्नायसारवित् ।
पयः शङ्खे यथा तद्वच्छिरः छन्दसि सारथिः ॥ ९ ॥
दन्त्योष्ठकरणं[६] सूक्ष्मं माधुर्यं तरुणं वचः ।

---

१. ग, यमेनेति ॥ २. का, कृत्स्ना । द, अश्ना ॥ ३. ग, मकारे ॥ ४. द, ०महँ ॥ ५. का, मकारान्ते ॥ ६. का, ग, दन्त्योष्ठय ॥

स्वभावं शिक्षुकस्याहुरन्यद्गुरुकृतं[7] भवेत ॥ १० ॥ १४ ॥

(१५)

तरुणं शिक्षुकं[1] प्राहुर्वृद्धमक्षरचिन्तकम्[2] ।
नैयायकं परिश्रुतं बहुधा यन्ति[3] याचकम् ॥ १ ॥

न करालो न लम्बोष्ठो न च सर्वानुनासिकः ।
गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति ॥ २ ॥[4]
प्रकृतिर्यस्य कल्याणी दन्त्योष्ठौ[5] यस्य शोभनौ ।
अधीतं येन तत्वेन स शिक्षां[6] पारयिष्यति ॥ ३ ॥
आगमैरधिकाः केचिद्विज्ञानैरपरेऽधिकाः ।
प्रयोगसौष्ठवादन्ये[7] नाहमस्मीति विस्मयः ॥ ४ ॥
सुतीर्थादागतं जग्धं स्वाम्नातं सुव्यवस्थितम् ।
सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजति[8] ॥ ५ ॥[9]
कुतीर्थादागतं दग्धमपर्वर्णैश्च भक्षितम् ।
न तस्य परिमोक्षो ऽस्ति पापाहेरिव किल्विषात्[10] ॥ ६ ॥[11]
येषां तीर्थागता विद्या नित्यमभ्यासनिर्जिता[12] ।
ते भवन्ति दुराधर्षाः ससिंहा[13] इव पर्वताः ॥ ७ ॥

---

७. का, शिक्षकस्य ॥

१. का, शिक्षकं ॥ २. प, वृद्धिम ॥ ३. का, भवन्ति । प, याति ॥ ४, तु० या० १ । २६,२७॥ ना० २ । ८ । १२ ॥ ५. का, ग, दन्तोष्ठौ ॥ ६. ग, विद्यां ॥ ७. द, ग, सौष्टवा० ॥ ८. का, राजते ॥ ९. तु० ना० २ । ८ । ११ ॥ १०. द, ग, किल्बिषात् ॥ ११. तु० ना० २ । ८ । १० ॥ १२. का, ०भ्यासवार्जिता ॥ १३. ग, ससिंह्ला ॥

न भोजनविलम्बी स्यान्न च स्यात् स्त्रीनिबन्धनः१४ ।
स दूरमपि विद्यार्थी व्रजेद्गरुडहंसवत्१५ ॥ ८ ॥१६
हयानामिव जात्यानामर्द्धरात्रार्द्धशायिनाम् ।
न विशेषार्थिनां निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति ॥ ९ ॥१७
अहेरिव जनाद्भीतः स्त्रीभ्यश्च नरकादिव ।
मिष्टान्न१८ विषवद्भीतः स विद्यां पारयिष्यति ॥१०॥१९॥१५

(१६)

सहस्रगुणिता१ विद्या शतशः परिवर्त्तिता२ ।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ॥ १ ॥३
शतेन गुणिता१ भवति४ सहस्रेण तु धारिता ।
शतानां तु सहस्रेण प्रेत्य चेह च तिष्ठति ॥ २ ॥५
उपांशु त्वरितं चैव योऽधीतेऽवत्रसन्निव६ ।
अपि रूपसहस्रैस्तु संशयेष्वेव वर्त्तते ॥ ३ ॥७
येषां च न ग्रहणशक्तिरतिप्रचण्डा,
लुब्धाश्च८ ये न शतशः परिवर्त्तयन्ति ।
निद्रां च ये प्रियसखीमिव न त्यजन्ति९,

---

१४. ग, स्त्रानि० ॥ १५. द, गुरुडासिंहवत । ग, गरुडसिंहवत् ॥ १६. तु० या० २ । ७२ ॥ ना० २ । ८ । २४ ॥ १७. तु० या० २ । ८० ॥ ना० २ । ८ । २३ ॥ १८. ग, मिष्टान्न ॥ १९. तु० या० २ । ७१ ॥ ना० २ । ८ । २५ ॥

१. ग, गणिता ॥ २. का, परिवार्जिता ॥ ३. तु० या० २ । ७५॥ ना० २ । ८ । २२ ॥ ४. ग, विद्या ॥ ५. तु० या० २ । ७६ ॥ ६. प, वृत्तसान्निव । द, वृत्र का विग्र किया गया है । ग, विग्र ॥ ७. तु० या० २ । ६९ ॥ ना० २ । ८ । १८ ॥ ८. का, लुब्धाच ॥

तेऽ९ तादृशा गुरुकुलेषु क्षयं व्रजंति ॥ ४ ॥
पञ्च विद्यां न गृह्णन्ति लुब्धाश्चण्डाश्च ये नराः ।
अलसाश्चातुरोगाश्च१० येषां च विकृतं मनः ॥ ५ ॥११
ऊर्द्ध्वं सहस्रादाम्नातं सततं चान्ववेक्षणम् ।
आप्तैस्तु सह सम्पाठस्त्रिविधा धारणा स्मृता१२ ॥ ६ ॥
यथा खनन् खनित्रेण भूतले१३ वारि विन्दति१४ ।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ ७ ॥१५
योजनानां सहस्रं तु शनैर्याति१६ पिपीलिका ।
आगच्छन्वैनतेयोऽपि१७ पदमेकं न गच्छति ॥ ८ ॥१८
पदेनैकेन१९ मेधावी पदानां विन्दते शतम् ।
मूर्खः पदसहस्रेण पदमेकं न विन्दति ॥ ९ ॥
पदं पादं तथार्द्धर्चं संचितव्यं२० प्रयत्नतः ।
अप्राज्ञः प्राज्ञतां याति सरिद्भिः सागरो यथा ॥ १० ॥
अनिर्वेदी श्रियो२१ मूलं लोहबद्धं२२ च२३ कुण्डलम्२३ ।
अहोरात्राणि दीर्घाणि कः समुद्रं न शोषयेत् ॥ ११ ॥
जलमभ्यासयोगेन शैलानां कुरुते क्षयम् ।

---

९. ग, त्यजन्त्येतादृशा ॥ १०. का, ग, आलसा० ॥ ११. तु० या० २ । ७० ॥ ना० २ । ८ । १४ ॥ १२. प, द, स्मृताः ॥ १३. ग, भूतलं ॥ १४. का, विन्दते ॥ १५. तु० या० २ । ७३ ॥ ना० २ । ८ । २७॥ १६. का, शतै० ॥ १७. प, द, अगच्छन्वै ॥ १८. तु० ना० २ । ८ । १६ ॥ १९. प, पादेनैकेन ॥ २०. का, सेवितव्यं ॥ २१. ग, श्रिया ॥ २२. ग, मोहबद्धं ॥ २३. का, कमण्डलुम् ॥

कर्कशानां मृदुस्पर्शं किमभ्यासो२४ न२४ साधयेत् ।१२।२५
आचार्याः सममिच्छन्ति पदच्छेदन्तु पण्डिताः ।
स्त्रियो मधुरमिच्छन्ति विक्रुष्टमितरे जनाः ॥ १३ ॥२६
आचार्योपासनाद्योगात्तपसा प्राज्ञसेवनात् ।
विगृह्यकथनात्कालात्षड्भिर्विद्या प्रपद्यते ॥ १४ ॥
आलस्यान्मूर्खसंयोगाद्भयाद्रोगनिपीडनात् ।
अत्याशक्याच्च२७ मानाच्च षड्भिर्विद्या विनश्यति ॥ १५ ॥
मण्डूकेन कृतां शिक्षां२८ विदुषां बुद्धिदीपिनीम् ।
यो हि तत्वेन जानाति ब्रह्मलोकं स गच्छतीति२९ ॥१६॥

इति शिक्षा समाप्ता मण्डूककृता ।३०

---

२४. प, ०भ्यासेन ॥ २५. तु० या० २ । ७५ ॥ २६. तु० या० २ । ३०, ३१ ॥ ना० १ । ३ । ३ ॥ २७. का, अत्यशक्त्या च ॥ २८. ग, शीक्षां ॥ २९. का, ब्रह्म० शब्द से अन्त तक दो वार आया है ॥ ३०. प, इति मंडूकी शिक्षा समाप्ता । का, इत्यथर्वणवेदीया माण्डूकी शिक्षा समाप्ता । ग, इत्यथर्ववेदे मंडूकी शीक्षा समाप्तः ॥

परिशिष्ट (क)

मा० या० वा नारद शिक्षाओं की तुलनात्मक

सूची ।

मा०	या०	ना०
१, ४ ॥	१, ५२ ॥	१, ६, २१ ॥
१, ५ ॥	१, ५३ ॥	...
१, ८ ॥	...	१, २, ५ ॥
१, ९ ॥	१, ८ ॥	१, ५, ३ ॥
१, १० ॥	...	१, ५, ४ ॥
१, ११ ॥	...	१, ५, ५ ॥
१, १२ ॥	...	१, ५, ६ ॥
१, १३ ॥	...	१, ४, १ ॥
१, १४ ॥	...	१, ४, २ ॥
२, १ ॥	...	१, ७, ३ ॥
२, २ ॥	...	१, ७, ४ ॥
२, ५ ॥	...	१, ७, १९ ॥
२, ७ ॥	...	१, ६, ५ ॥
२, ९ ॥	१, ४८: ४९ ॥	...
२, ११ ॥	१, ४५ ॥	...
२, १२ ॥	...	१, ६, १२: १३ ॥
३, १ ॥	१, ४६ ॥	...
३, २ ॥	१, २५, २६ ॥	...
३, ३ ॥	१, ३९ ॥	...
३, ४ ॥	१, ४० ॥	...
३, ५ ॥	१, ४२ ॥	...

३, ६ ॥	...	१, ६, १८ ॥
४, १ ॥	१, ३५; ३६ ॥	२, ८, ३; ४ ॥
४, ३ ॥	१, ३७ ॥	२, ८, ५ ॥
४, ७ ॥	२, १०२ ॥	२, ८, ३० ॥
४, ८ ॥	...	२, ८, ३१ ॥
४, ९ ॥	...	२, ८, १५; १७ ॥
४, १० ॥	१, ५४ ॥	...
४, १२ ॥	१, ५८ ॥	...
४, १३ ॥	१, ५९ ॥	...
५, २ ॥	२, २७ ॥	२, ८, ६ ॥
५, ३ ॥	...	२, ३, १ ॥
५, ७ ॥	...	२, ७, ८ ॥
५, ११ ॥	२, २८; २९ ॥	२, ५, १ ॥
६, १ ॥	२, २९ ॥	२, ५, २ ॥
६, २ ॥	२, ८ ॥	...
६, ३ ॥	२, २६ ॥	२, ५, ३ ॥
६, ६ ॥	...	१, ६, १५ ॥
६, ७ ॥	२, ११ ॥	...
७, १ ॥	१, ७१, ७२ ॥	१, ८, ५; १० ॥
७, ३ ॥	१, ७३ ॥	२, १, ३ ॥
७, ४ ॥	१, ७५ ॥	२, १, ६ ॥
७, ५ ॥	१, ७३ ॥	२, १, १ ॥
७, ६ ॥	१, ७४ ॥	२, १, २ ॥
७, ७ ॥	१, ७८ ॥	२, १, ७ ॥
७, ८ ॥	१, ७६ ॥	२, १, ४ ॥
७, ९ ॥	१, ७७ ॥	२, १, ५ ॥
७, १० ॥	१, ७८ ॥	...

८, ७ ॥	२, ५९ ॥	२, २, १६ ॥
९, १ ॥	...	२, ४, १ ॥
९, २ ॥	२, ९ ॥	...
९, ३ ॥	२, ११ ॥	२, ४, २ ॥
९, ६ ॥	२, ७ ॥	१, ६, ११ ॥
९, ७ ॥	...	२, ४, ४ ॥
९, ११ ॥	२, १३ ॥	...
९, १२ ॥	२, १४ ॥	...
९, १३ ॥	२, १५ ॥	...
१०, ४ ॥	२, ५३ ॥	२, ५, ४ ॥
१०, ५ ॥	२, ५४ ॥	२, ५, ९ ॥
१०, ७ ॥	...	२, ४, ५ ॥
१०, ९ ॥	२, ९७ ॥	२, ४, ९ ॥
१०, १० ॥	२, १०१ ॥	२, ४, ८ ॥
११, ५ ॥	२, ११४ ॥	२, २, ९ ॥
११, ६ ॥	२, २२ ॥	२, २, १४ ॥
११, १० ॥	...	२, २, ६ ॥
११, ११ ॥	२, १२२ ॥	२, २, ७ ॥
१२, ९ ॥	...	२, ५, ११ ॥
१३, २ ॥	१, १३; १४ ॥	...
१३, ३ ॥	१, १७; १८ ॥	...
१५, २ ॥	१, २६; २७ ॥	२, ८, १२ ॥
१५, ५ ॥	...	२, ८, ११ ॥
१५, ६ ॥	...	२, ८, १० ॥
१५, ८ ॥	२, ७२ ॥	२, ८, २४ ॥
१५, ९ ॥	२, ८० ॥	२, ८, २३ ॥
१५, १० ॥	२, ७१ ॥	२, ८, २५ ॥

१६, १ ॥
१६, २ ॥
१६, ३ ॥
१६, ५ ॥
१६, ७ ॥
१६, ८ ॥
१६, १२ ॥
१६, १३ ॥

२, ७५ ॥
२, ७६ ॥
२, ६९ ॥
२, ७० ॥
२, ७३ ॥
...
२, ७५ ॥
२, ३०; ३१ ॥

२, ८, २२ ॥
...
२, ८, १८ ॥
२, ८, १४ ॥
२, ८, २७ ॥
२, ८, १६ ॥
...
१, ३, ३ ॥

परिशिष्ट (ख) निदर्शनसूची।

मा० शि०	उदाहरण	अथर्ववेद
७ । ६ ॥	प्रजापतेः	३ । १० । १३ ॥
७ । १० ॥	तनूनपात्	५ । २७ । २ ॥
८ । १ ॥	एजाति	६ । २२ । ३ ॥
८ । १० ॥	अँहोमुचः	*
,,	वातरंहाः	६ । ६२ । १ ॥
,,	दृह्हं	६ । १३६ । २ ॥
८ । ११ ॥	अयं राजा	३ । ४ । ५ ॥
,,	पशोर्मांसम्	अप्राप्त
,,	क्षत्रियाणां धनूँषि	अप्राप्त
६ । १० ॥	शतबालिशा	**
१० । २ ॥	वर्षं	२ । २७ । ६ ॥
,,	बर्हिः	५ । १२ । ४ ॥
१० । ८ ॥	गोमान्	६ । ६८ । ३ ॥
१० । १० ॥	वृष्टमान्	***
१२ । १ ॥	हंसः······	अप्राप्त
१२ । १० ॥	सीता	३ । १७ । ६ ॥
१४ । २ ॥	वाङ्म	१६ । ६० । १ ॥
१४ । ३ ॥	बएमहान्	१३ । २ । २६ ॥
१४ । ४ ॥	यज्ञ	४ । ३ । ७ ॥
१४ । ५ ॥	त्रिष्टुम्भ	अप्राप्त

* अथर्ववेद में अहंः ऽमुचम १६ । ४२ । ४ ॥, वा अहंः ऽमुचे १६ । ४२ । ३ ॥ पाठ है।

** अथर्ववेद में शतवल्शा ६ । ३० । २ ॥ पाठ है।

*** अथर्वपाठ वर्षम् है। अथर्ववेद में वृष्टिमान् ऽइव २० । १३८ । १ ॥ पाठ है।

परिशिष्ट (ग) छान्दसप्रयोग ।

वृत्तीरनुक्रान्ताः	१ । १ ॥
अग्निमारुतयोः	१ । ४ ॥
रम्भान्ति	१ । ६ ॥
उरः शिरोभ्याम्	१ । १२ ॥
पर्वे	२ । १० ॥
आरभेत्	२ । १४ ॥
द्वावेतौ ... भवेत्	३ । २ ॥
नासिकोष्ठौ	६ । ७ ॥
प्रतिषेधते	१२ । १ ॥
दन्त्योष्ठौ	१५ । ३ ॥

श्लोकार्द्धों की प्रतीकसूची।